

७४. वृषभसेनस्याख्यानम्

श्रीजिनं भारतीं नत्वा श्रुताब्धिं मुनिसत्तमम्। वक्ष्ये वृषभसेनस्य चरित्रं भुवनोत्तमम् ॥१॥
 दक्षिणादिपथे ख्याते कुणालनगरे वरे। राजा वैश्रवणो धीमान्सद्दृष्टिर्जिनभक्तिभाक् ॥२॥
 रिष्टामात्योभवन्मन्त्री पापी मिथ्यात्वमोहितः। युक्तं चन्दनवृक्षस्य पार्श्वे दुष्टोहिको भवेत् ॥३॥
 एकदा भूरिसंघेन मण्डितो मुनिनायकः। सुधीर्वृषभसेनाख्यस्तत्रायातो जगद्धितः ॥४॥
 श्रुत्वा वैश्रवणो भूपो मुनीनामागमं शुभम्। लसद्विभूतिसंयुक्तो भक्तिमाञ्जुद्धमानसः ॥५॥
 सार्द्धं सद्भव्यसन्दोहैः समागत्य मुनीश्वरान्। त्रिः परीत्य महाप्रीत्या नमस्कृत्य पुनः पुनः ॥६॥
 समभ्यर्च्य जलाद्यैश्च स्तुत्वा स्तोत्रैः सुखप्रदैः। धर्मं श्रुत्वा जिनेन्द्रोक्तं प्रीतो राजा जगद्धितम् ॥७॥
 जैनधर्मं जगत्सारं सम्पदाशर्मदायकम्। समाकर्ण्य सुखी न स्यात्को वा चेद्भाविसद्गतिः ॥८॥
 रिष्टामात्यस्तदा मन्त्री वादं कृत्वा मदोद्धतः। मानभङ्गं तरां प्राप्तो मुनीन्द्रवचनोत्करैः ॥९॥
 ततो रात्रौ समागत्य प्रच्छन्नं मानभङ्गतः। पापी प्रज्वालयामास वह्निना वसतिं सताम् ॥१०॥

७४. वृषभसेन की कथा

जिनेन्द्र भगवान्, जिनवाणी और ज्ञान के समुद्र साधुओं को नमस्कार कर वृषभसेन की उत्तम कथा लिखी जाती है ॥१॥

दक्षिण दिशा की ओर बसे हुए कुण्डल नगर के राजा वैश्रवण बड़े धर्मात्मा और सम्यग्दृष्टि थे और रिष्टामात्य नाम का इनका मन्त्री इनसे बिल्कुल उल्टा-मिथ्यात्वी और जैनधर्म का बड़ा द्वेषी था। सो ठीक ही है, चन्दन के वृक्षों के आसपास सर्प रहा ही करते हैं ॥२-३॥

एक दिन श्रीवृषभसेन मुनि अपने संघ को साथ लिए कुण्डल नगर की ओर आए। वैश्रवण उनके आने के समाचार सुन बड़ी विभूति के साथ भव्यजनों को संग लिए उनकी वन्दना को गया। भक्ति से उसने उनकी प्रदक्षिणा की, स्तुति की, वन्दना की और पवित्र द्रव्यों से पूजा की तथा उनसे जैनधर्म का उपदेश सुना। उपदेश सुनकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ। सच है, इस सर्वोच्च और सब सुखों के देने वाले जैनधर्म का उपदेश सुनकर कौन सद्गति-का पात्र सुखी न होगा? ॥४-८॥

राजमन्त्री भी मुनिसंघ के पास आया। पर वह इसलिए नहीं कि वह उनकी पूजा-स्तुति करे किन्तु उनसे वाद-शास्त्रार्थ कर उनका मान भंग करने, लोगों की श्रद्धा उन पर से उठा देने। पर यह उसकी भूल थी। कारण, जो दूसरों के लिए कुँआ खोदते हैं उनमें पहले उन्हें ही गिरना पड़ता है। यही हुआ भी। मन्त्री ने मुनियों का अपमान करने की गर्ज से उनसे शास्त्रार्थ किया, पर अपमान भी उसी का हुआ। मुनियों के साथ उसे हार जाना पड़ा। उस अपमान की उसके हृदय पर गहरी चोट लगी। इसका बदला चुकाना निश्चित कर वह शाम को छुपा हुआ मुनिसंघ के पास आया और जिस स्थान में वह ठहरा था उसमें उस पापी ने आग लगा दी। बड़े दुःख की बात है कि दुर्जनों का स्वभाव एक विलक्षण ही तरह का होता है। वे स्वयं तो पहले दूसरों के साथ छेड़-छाड़ करते हैं और जब उन्हें

स्वयं चापल्यमाधत्ते स्वयं कुप्यति साधुषु। स्वयं पापं करोत्येव दुर्जनस्येति चेष्टितम् ॥११॥
 तदा ते मुनयः सर्वे शुक्लध्यानेन धीधनाः। अनुभूयोपसर्गं तं प्राप्ताः स्वर्गापवर्गकम् ॥१२॥
 विघ्नं करोतु दुष्टात्मा पापी दुर्गतिकारणम्। सन्तः सद्धर्मसेवाभिर्लभन्ते सौख्यमद्भुतम् ॥१३॥
 सन्तस्ते मुनिसत्तमाः शुचितराः सद्ध्यानशैलाश्रिताः। श्रीमत्सारजिनेन्द्रतत्त्वचतुरा जित्वोपसर्गं दृढम् ॥
 संप्राप्ताः स्वविशुद्धभावभरतः स्वर्गापवर्गं शुभं। देवेन्द्रादिसमर्चिताः शुभकराः कुर्युः सतां मंगलम् ॥१४॥

इति कथाकोशे श्रीवृषभसेनमुनेराख्यानं समाप्तम्।

७५. शालिसिक्थमत्स्यस्य मनोदोषाख्यानम्

स्वयंभुवं नमस्कृत्य जिनेन्द्रं केवलेक्षणम्। संबोधाय सतां वच्मि मनोदोषस्य लक्षणम् ॥१॥
 स्वयंभूरमणे ख्याते समुद्रे प्रान्तवर्तिनि। सहस्रयोजनैर्दीर्घो विस्तारे च तदद्भ्यः ॥२॥

अपने कृत का फल मिलता है तब वे यह समझ कर, कि मेरा इसने बुरा किया, दूसरे निर्दोष सत्पुरुषों पर क्रोध करते हैं और फिर उनसे बदला लेने के लिए उन्हें नाना प्रकार के कष्ट देते हैं ॥९-११॥

जो हो, मंत्री ने अपनी दुष्टता में कोई कसर न की। मुनिसंघ पर उसने बड़ा ही भयंकर उपसर्ग किया। पर उन तत्त्वज्ञानी-वस्तु स्थिति को जानने वाले मुनियों ने इस कष्ट की कुछ परवाह न कर बड़ी सहन-शीलता के साथ सब कुछ सह लिया और अन्त में अपने-अपने भावों की पवित्रता के अनुसार उनमें से कितने ही मोक्ष गए और कितने ही स्वर्ग में ॥१२॥

दुष्ट पुरुष सत्पुरुषों को कितना ही कष्ट क्यों न पहुँचावे उससे खराबी उन्हीं की है उन्हें ही दुर्गति में दुःख भोगना पड़ेगा और सत्पुरुष तो ऐसे कष्ट के समय में भी अपनी प्रतिज्ञाओं पर दृढ़ रहकर अपना धर्म अर्थात् कर्तव्य पालन कर सर्वोच्च सुख लाभ करेंगे। जैसा कि उक्त मुनिराजों ने किया ॥१३॥

वे मुनिराज आप लोगों को भी सुख दें, जिन्होंने ध्यानरूपी पर्वत का आश्रय ले बड़ा दुःसह उपसर्ग जीता, अपने कर्तव्य से सर्वश्रेष्ठ कहलाने का सम्मान लाभ किया और अन्त में अपने उच्च भावों से मोक्ष सुख प्राप्त कर देवों, विद्याधरों, चक्रवर्तियों आदि द्वारा पूजा को प्राप्त हुए और संसार में सबसे पवित्र गिने जाने लगे ॥१४॥

७५. शालिसिक्थ मच्छ के भावों की कथा

केवलज्ञानरूपी नेत्र के धारक और स्वयंभू श्री आदिनाथ भगवान् को नमस्कार कर सत्पुरुषों को इस बात का ज्ञान हो कि केवल मन की भावना से ही मन में विचार करने मात्र से ही कितना दोष या कर्मबन्ध होता है, इसकी एक कथा लिखी जाती है ॥१॥

सबसे अन्त के स्वयंभूरमण समुद्र में एक बड़ी भारी दीर्घकाय मच्छ है। वह लम्बाई में एक हजार योजन, चौड़ाई में पाँच सौ योजन और ऊँचाई में ढाई सौ योजन का है। (एक योजन चार या